सम्बद्ध है, बन्धा हुआ है।

रोबर्ट मर्टन : ***प्रकार्य व्यवस्था को बनाये रखने के लिये अनुकूलन कहते हैं।***

मर्टन ने प्रकार्यवादी विश्लेषण के लिये एक पेराडिम (Paradigm) यानि मॉडल को बनाया है। इसमें जब वे प्रकार्यात्मक विकल्पों की चर्चा करते है तब प्रकार्यवाद को परिभाषित भी करते हैं। उन्होंने इस परिभाषा में प्रकार्य को तीन भागों में विभाजित किया है:

1. *प्रकार्य (Function) ये वे गतिविधियाँ है जो व्यवस्था को बनाये रखने के लिये व्यवस्था से अनुकूलन करती है।* यदि किसी शहर में सुरक्षा के लिये वाहन चलाने के लिये हेलमेट को पहना जाता है तो वाहन चालक की यह गतिविधि प्रकार्य है। क्योंकि *यह यातायात की व्यवस्था को बनाये रखने में सहायक है* या विद्यालय में जब कोई विद्यार्थी प्रार्थना में सम्मिलित होकर पंक्तिबद्ध खड़ा रहता है तो उसकी यह गतिविधि भी प्रकार्य है, क्योंकि इससे विद्यालय की व्यवस्था जैसी भी है, बनी रहती है। फौज में वरदी को पहनना भी इसी तरह फौज की व्यवस्था को बनाये रखने वाली प्रक्रिया है।
2. *दुष्प्रकार्य (Dysfunction)* जब व्यक्ति की गतिविधि व्यवस्था को बनाये रखने के लिये अनुकूलन नहीं करती, और इस अर्थ में हेलमेट नहीं पहनते, वरदी नहीं पहनते, प्रार्थना में सम्मिलित नहीं होते तो इसे मर्टन दुष्प्रकार्य कहते हैं। अतः दुष्प्रकार्य *ऐसी गतिविधि है जो व्यवस्था को बनाये रखने में अवरोधक है।*
3. *अप्रकार्य (Non-function) यह वह गतिविधि है जिसके होने न होने से व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस गतिविधि का व्यवस्था के बनाव बिगाड़ से कोई सरोकार नहीं होता।* यदि किसी छात्रावास में विद्यार्थी रात भर जागता है और इस दौरान कई बार चाय व पानी पीता है तो उसकी यह गतिविधि अप्रकार्य है। विद्यार्थी के ऐसा करने से छात्रावास की व्यवस्था में कोई बिगाड़ नहीं आता।

यदि हम मर्टन द्वारा दी गयी प्रकार्य की परिभाषा का गहन विश्लेषण करें तो इससे स्पष्ट है कि *प्रकार्य का सम्बन्ध व्यवस्था से होता है और व्यवस्था वह है जिसमें एकाधिक कर्ता (Actors) मानक, मूल्य और उद्देश्य है। व्यवस्था की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमें निरन्तरता होती है।* समाज में कोई भी व्यवस्था बनी बनाई नहीं होती। अनुसंधान कर्ता

अपने अध्ययन के मुद्दे के संदर्भ में किसी भी व्यवस्था को परिभाषित करता है। किसी अनुसंधानकर्ता के लिये परिवार व्यवस्था हो सकती है, किसी के लिये माता-पिता व्यवस्था हो सकते हैं। व्यवस्था वास्तव में अनुसंधानकर्ता की परिभाषा पर निर्भर है। व्यवस्था के इसी संदर्भ में हमें प्रकार्य को परिभाषित करना चाहिये।

पिछले पृष्टों में हमने प्रकार्यवाद की व्याख्या और इसकी परिभाषा प्रस्तुत की है। यह निर्विवाद है कि प्रकार्यवादी सिद्धान्त समाजशास्त्र में उतना ही पुराना है जितना स्वयं समाजशास्त्र। इसका उद्‌गम 19 वीं शताब्दी के अंतिम दशक से है, यानि अगस्त कॉम्त से। इस सिद्धान्त में उतार-चढ़ाव भी हुए है, लेकिन आज तो कुछ प्रकार्यात्मक सिद्धान्त है वह बहुत कुछ संशोधित रूप में है। प्रकार्यवाद की हम सावयव से तुलना करें या इसे एक व्यवस्था के रूप में देखें तो इसके पीछे महत्वपूर्ण मुद्दा समाज के विविध व्यक्तियों में सर्वसम्मति पैदा करना पाते हैं। 18वीं शताब्दी के यूरोप में जहां एक ओर फ्रांस की राज्य क्रांति हुई, वही दूसरी ओर औद्योगिक क्रांति ने बरसों से काम करते आये कारीगरों और दस्तकारों को अपने व्यवसाय से बेदखल कर दिया। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ऐसा लगा कि कहीं यूरोप का परम्परागत समाज ताश के पत्तों की तरह बिखर न जाये। इस युग के विचारकों के सामने सबसे बड़ी समस्या सामाजिक व्यवस्था में एकीकरण स्थापित करना था, व्यवस्था कायम करनी थी और इस तरह की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिये समाज की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होनी थी। चाहे दुर्खाइम सामाजिक तथ्य और व्यक्ति पर उसके दबाव की चर्चा करते हों, चाहे अगस्त कॉम्त और स्पेन्सर समाज को सावयव समझते हों, बुनियादी समस्या किसी मूल्य व्यवस्था के द्वारा समाज को बांधकर रखने की थी। शायद इसी कारण वह विगत 150 वर्षों में प्रकार्यात्मक सिद्धान्त अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रख सका है।

प्रकार्यवाद मनुष्यों की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। ये गतिविधियाँ बकौल, दुर्खाइम समाज को एकीकृत करने के लिये होती हैं या पारसंस और मर्टन की पदावली में व्यवस्था को बनाये रखने के लिये होती है। जब गतिविधि समाज या व्यवस्था के एकीकरण के लिये होती है, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये होती है, तो यही प्रकार्यवाद है।

सामाजिक